वैदिककालीन सामाजिक स्तरीकरण के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था

डॉ. रामपति शाह

ब्राह्मण, राजन्य अथवा क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के रूप में समाज के चार वर्गो का उल्लेख उत्तर–वैदिक साहित्य में स्थान–स्थान पर हुआ है। बढ़ते हुए प्रजातीय सम्मिश्रण तथा उत्पादन के अतिरेक से बढ़ती हुई आर्थिक असमानताओं के कारण जनों अथवा आर्य–दास वर्ण पर आधारित विभाजन रेखा प्रक्षीण हो चली थी। जनों का यह विघटन पूर्ववर्ती काल से ही चला आ रहा था। शरीर के रंग के आधार पर मूलतः पृथक् मानव समुदायों–आर्य और आर्येत्तर के सन्दर्भ में व्यहृत होने वाला वर्ण शब्द अब समाज के आन्तरिक स्तरीकरण का परिचायक बनने लगा था।

उत्तर–वैदिक काल में वर्णो की उत्पत्ति के संबंध में कई विचार मिलते हैं। पर सामाजिक स्तरीकरण की परम्परा–संबंधी विचार अपने बीज रूप में सबसे पहले ऋग्वेद के पुरूषसूक्त में प्राप्त होता है। पुरूषसूक्त में मिलने वाला यह विचार उत्तर वैदिक काल के कुछ अन्य ग्रंथों में भी प्राप्त होता है। इनके अनुसार विराट् पुरूष के मुख से ब्राह्मण की, भुजाओं से राजन्य अथवा क्षत्रिय की, ऊरू से वैश्य की तथा पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।